

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 20: भगवान् का प्राकट्य

21 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



यज्ञ की अग्नि भी जिसके समक्ष फीकी पड़ जाए: स्वयं श्रीहरि राजा पृथु के मण्डप में पग रखते हैं, कभी विद्रोही रहा इन्द्र अब उनके साथ विनम्र होकर चलते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

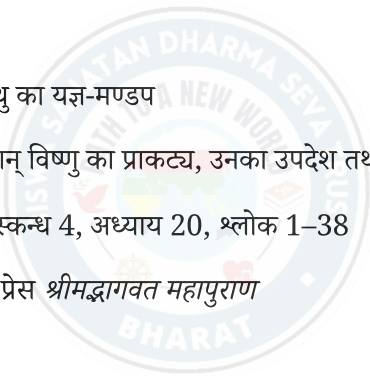
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, राजा पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए, इन्द्र की ईर्ष्यालु बाधा सही, और ऋषियों के वचन पर, संघर्ष के बजाय मेल-मिलाप चुना। यह विंश अध्याय उस भक्ति का मुकुट है। अपने सेवक से भली प्रकार प्रसन्न होकर, परम भगवान् श्रीहरि स्वयं पृथु के यज्ञ-मण्डप में अवतरित होते

हैं, पश्चात्तापी इन्द्र को अपने साथ लाते हुए। कोई क्षमा माँगे जाने से पहले ही, भगवान् राजा को शुद्ध आत्मा के स्वभाव का तथा एक शासक के अपनी प्रजा की रक्षा करने के सच्चे कर्तव्य का उपदेश देते हैं, और तभी उन्हें परामर्श देते हैं कि वे इन्द्र को पूर्णतः क्षमा करें। इसके बदले कोई भी वरदान अर्पित किए जाने पर, पृथु इस लोक तथा परलोक के हर खज़ाने को ठुकरा देते हैं — यहाँ तक कि जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त करने वाली मुक्ति को भी — और इसके बजाय दस हज़ार कानों की याचना करते हैं जिनसे वे भक्तों के मुखों से भगवान् की महिमा सुनते रहें। द्रवित होकर, भगवान् उन्हें आशीर्वाद देते हैं और प्रस्थान की तैयारी करते हैं। यह शुद्ध भक्ति के प्रतिफल का, क्षमा करने वाले विवेक का, और एक ऐसी प्रार्थना का अध्याय है जो भगवान् के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहती।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 20 (विंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: राजा पृथु के यज्ञ-मण्डप में भगवान् का प्राकट्य
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें भगवान् तथा पृथु के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: राजा पृथु का यज्ञ-मण्डप
- केन्द्रीय विषय: भगवान् विष्णु का प्राकट्य, उनका उपदेश तथा इन्द्र को क्षमा करने का परामर्श, तथा पृथु की शुद्ध भक्ति के लिए प्रार्थना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 1–38
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 19 ने बताया कि कैसे राजा पृथु के सौ अश्वमेध यज्ञ ईर्ष्यालु इन्द्र द्वारा बाधित हुए, और कैसे ऋषियों ने पृथु को उनकी भगवान् के अंश की पहचान की ओर लौटाया, ताकि वे अपना हाथ रोक लें और पश्चात्तापी इन्द्र से मेल कर लें। यह विंश अध्याय तब आरम्भ होता है जब स्वयं भगवान्, पृथु की भक्ति से सन्तुष्ट, यज्ञ-मण्डप में प्रकट होते हैं — इन्द्र को अपने साथ लाते हुए।

भगवान् का प्राकट्य

यज्ञों से भली प्रकार प्रसन्न होकर, वैकुण्ठ के सर्वव्यापी भगवान् — समस्त यज्ञ के स्वामी तथा भोक्ता — स्वयं मण्डप में प्रकट हुए, और इन्द्र उनके साथ आए, प्रायश्चित्त के लिए तत्पर। और भगवान् बोलने लगे।

मैत्रेय उवाच

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ।

यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥ १ ॥

maitreya uvāca bhagavān api vaikuṇṭhaḥ sākāṁ maghavatā vibhuḥ yajñair yajña-patis tuṣṭo yajña-bhuk tam abhāṣata

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: वैकुण्ठ के सर्वव्यापी भगवान्, समस्त यज्ञ के स्वामी तथा भोक्ता, यज्ञों से भली प्रकार प्रसन्न होकर, इन्द्र के साथ प्रकट हुए और पृथु से बोले। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 1)



भगवान् पृथु को इन्द्र को पूर्णतः क्षमा करने का परामर्श देते हैं, यह समझाते हुए कि उसकी बाधा भी एक दिव्य योजना का अंश थी, और राजा को आत्मा तथा समता का सर्वोच्च ज्ञान सिखाते हैं (श्लोक 2-15)।

भगवान् ने राजा को सर्वोच्च ज्ञान से परामर्श दिया। उन्होंने समझाया कि इन्द्र की बाधा, और यहाँ तक कि जो असत्य धर्म-वेश उसने बिखेरे, एक बड़ी दिव्य योजना के भीतर प्रकट हुए, और कि एक बुद्धिमान् भक्त कोई द्वेष नहीं रखता; उन्होंने पृथु से कहा कि वे इन्द्र को एक भाई की भाँति क्षमा करें (श्लोक 2-4)।

फिर उन्होंने सबसे गहन उपदेश की ओर मुड़े: स्वयं आत्मा के स्वभाव की ओर। आत्मा, उन्होंने कहा, एक, शुद्ध तथा स्वयं-प्रकाशमान है, प्रकृति के गुणों के मध्य रहते हुए भी उनसे मुक्त — प्रत्येक क्रिया की अदृश्य साक्षी, उस “मैं” की भावना से भिन्न जो देहधारी को उसके शरीर से बाँधती है। पूर्ण ज्ञान, उन्होंने जोड़ा, इसी में है कि आत्मा की इस स्थिति तथा समस्त आत्माओं के स्वामी के रूप में उनकी अपनी स्थिति दोनों को जाना जाए (श्लोक 5-8)।

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ।

सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥ ७ ॥

ekaḥ śuddhaḥ svayaṁ-jyotir nirguṇo 'sau guṇāśrayaḥ sarva-go 'nāvṛtaḥ sākṣī nirātmātmātmanah paraḥ

अर्थ: भगवान् ने कहा: आत्मा एक, शुद्ध, स्वयं-प्रकाशमान तथा सर्वव्यापी है; वह प्रकृति के गुणों के मध्य चलते हुए भी उनसे आवृत नहीं होती, बल्कि उनकी मूक साक्षी बनकर खड़ी रहती है, उस अहं-भाव से भी परे जो देहधारी से चिपका रहता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 7)

आत्मा की इस समझ से, भगवान् ने भक्त की सच्ची समता को उभारा — वह मन जो शरीर के सुख तथा दुःख से अविचलित तथा स्थिर रहता है, क्योंकि वह जानता है कि वह शरीर से भिन्न है (श्लोक 9-12)। फिर उन्होंने उसी समता को पृथु के राजा-पद की ओर मोड़ा: एक शासक का सम्पूर्ण उद्देश्य, उन्होंने कहा, प्रजा की रक्षा करना है, केवल उन पर शासन या कर लगाना नहीं। जो रक्षा करता है वह परलोक में अपनी प्रजा के पुण्य का छठा भाग अर्जित करता है; जो रक्षा किए बिना कर लेता है वह उनके पाप को अपने ऊपर ले लेता है (श्लोक 13-15)।

श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो
यत्साम्पराये सुकृतात् षष्ठमंशम् ।
हर्तान्यथा हृतपुण्यः प्रजाना-
मरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥

śreyaḥ prajā-pālanam eva rājño yat sāmparāye sukṛtāt ṣaṣṭham aṁśam hartānyathā hṛta-puṇyaḥ prajānām arakṣitā kara-hāro 'gham attī

अर्थ: भगवान् ने कहा: एक राजा का सच्चा कल्याण केवल अपनी प्रजा की रक्षा करने में है, क्योंकि इससे वह परलोक में उनके पुण्य का छठा भाग अर्जित करता है; परन्तु जो शासक रक्षा दिए बिना कर लेता है वह उनके पाप के फल को अपने ऊपर ले लेता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 14)

वरदान का अर्पण

तब भगवान् ने, अनुष्ठान से नहीं बल्कि राजा के अपने सद्गुण तथा शील से बँधे, पृथु को जो भी अभिलषित वरदान अर्पित किया — और उन्हें किसी भी उपहार से प्रिय एक रहस्य बताया: कि वे यज्ञ, तप, या योग से सहज नहीं मिलते, बल्कि उससे जीते जाते हैं जिसका मन समस्त अवस्थाओं में सम तथा स्थिर है।

वरं च मत्कञ्चन मानवेन्द्र
वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि-
र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥

varam ca mat kañcana mānavendra vṛṇīṣva te 'haṁ guṇa-śīla-yantritaḥ nāhaṁ makhair vai sulabhas tapobhir yogena vā yat sama-citta-vartī

अर्थ: (भगवान् ने कहा:) हे नरेश, मुझसे कोई वरदान माँगो, क्योंकि मैं तेरे सद्गुण तथा शील से बँधा हूँ। मैं यज्ञ, तप, या योग से सहज नहीं मिलता — मैं उससे प्राप्त होता हूँ जो समस्त अवस्थाओं में समचित्त है। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 16)



भगवान्, अनुष्ठान से नहीं बल्कि अपने सेवक के सद्गुण से बँधे, राजा पृथु को कोई भी अभिलषित वरदान अर्पित करते हैं, यह प्रकट करते हुए कि वे अनुष्ठानों से नहीं बल्कि एक सम तथा स्थिर मन से जीते जाते हैं (श्लोक 16-22)।

पृथु की प्रार्थना

अब अध्याय का हृदय आया। स्वयं मुक्ति के स्वामी द्वारा कुछ भी अर्पित किए जाने पर, पृथु ने न धन माँगा, न स्वर्ग, न शक्ति, न संसार से मुक्ति भी। उन्होंने कहा कि एक बुद्धिमान् को समस्त के दाता से ऐसी वस्तुएँ माँगते लज्जित होना चाहिए — वे वस्तुएँ जो नरक के प्राणी भी रखते हैं। इसके बजाय उन्होंने शुद्ध प्रेम की एक प्रार्थना की: वे उस मुक्ति को भी ठुकराते हुए बोले जिसमें भगवान् के प्रति प्रेम-विनिमय की कोई मिठास शेष न रहे, वह मिठास जो महान्तम भक्तों के हृदय से मुख तक होकर जगत में बहती है; और उन्होंने, प्रत्येक अन्य वरदान के स्थान पर, दस हज़ार कानों की याचना की जिनसे वे उस मिठास को सदा सुनते रहें।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्

न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो

विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥

na kāmāye nātha tad apy ahaṁ kvacin na yatra yuṣmac-caraṇāmbujāsavaḥ mahattamāntar-hṛdayān mukha-cyuto vidhatsva karṇāyutam eṣa me varaḥ

अर्थ: (पृथु ने प्रार्थना की:) हे नाथ, मैं उस मुक्ति को भी नहीं चाहता जिसमें आपके चरण-कमलों के उस अमृत का स्वाद न हो, जो महान्तम भक्तों के हृदयों तथा मुखों से प्रवाहित होता है। उसे सुनने के लिए मुझे दस हज़ार कान दीजिए — यही एकमात्र वरदान मैं माँगता हूँ। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 24)

ऐसा श्रवण, उन्होंने कहा, कोई छोटी बात नहीं: जब भगवान् के चरणों की मधुरता किसी महान् आत्मा के वचनों की साँस पर सवार होकर चलती है, तो वह सबसे विस्मृत हृदय को भी उस सत्य के प्रति जगा सकती है जिसे वह खो चुका समझता था — इसलिए उस एक संग में उन्हें आगे कुछ नहीं चाहिए था।

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधा कणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुर्योगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥

*sa uttamaśloka mahan-mukha-cyuto bhavat-padāmbhoja-sudhā kaṇānilaḥ smṛtiṁ punar
vismṛta-tattva-vartmanāṁ kuryogināṁ no vitaraty alaṁ varaiḥ*

अर्थ: हे उत्तम कीर्ति वाले भगवन्, वह वायु जो महान् आत्माओं के मुखों से आपके चरण-कमलों के अमृत-कण ले चलती है, मार्ग भूले पतित साधकों को भी सत्य की स्मृति लौटा देती है — तब अन्य वरदानों से बहुत हुआ! (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 25)



भागवत की सबसे सुन्दर प्रार्थनाओं में से एक में, पृथु मुक्ति को भी अस्वीकार करते हैं और केवल दस हज़ार कानों की याचना करते हैं जिनसे वे, सदा के लिए, भगवान् की महिमा सुन सकें (श्लोक 23-30)।

यहाँ अध्याय का सबसे गहरा मोड़ है। कोई भी वरदान अर्पित किए जाने पर, पृथु जान-बूझकर भगवान् के साथ एकत्व को भी त्याग देते हैं — वह मुक्ति जो जन्म-मृत्यु के चक्र को ही समाप्त कर देती है — क्योंकि, वे कहते हैं, उस विलय में भगवान् के साथ प्रेम-विनिमय का कोई स्वाद नहीं है (श्लोक 23)। प्रकृति में उलझे हुए किसी जीव के लिए, भगवान् में विलीन होना सर्वोच्च पुरस्कार-सा प्रतीत होता है; परन्तु जिसने भक्ति का स्वाद चख लिया है उसके लिए, सेवक तथा स्वामी के सम्बन्ध को मिटा देने वाला विलय कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह उसी श्रवण, स्मरण

तथा सेवा को समाप्त कर देता है जिसकी वह लालसा रखता है। यही कारण है कि, अपनी प्रार्थना में आगे, पृथु भगवान् से यह याचना करते हैं कि वे उनके प्रति वैसे ही कार्य करें जैसे एक पिता अपने बालक के प्रति करता है — जो श्रेष्ठ है उसकी व्यवस्था स्वयं करते हुए — बजाय इसके कि वे स्वयं अपनी मुक्ति तक चुनें (श्लोक 31)। भगवान् के साथ सम्बन्ध, अध्याय सिखाता है, जन्म-मृत्यु के अन्त से भी बढ़कर है।

पृथु ने आगे प्रार्थना की कि भगवान् तथा भगवान् के भक्तों के प्रति उनकी भक्ति कभी न घटे, और कि उनका मन सदा के लिए उन चरण-कमलों में विश्राम पाए। यह एक ऐसी प्रार्थना है जो स्वयं भगवान् तथा उनकी महिमा के अनन्त श्रवण के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगती।

भगवान् का आशीर्वाद तथा प्रस्थान

भगवान् राजर्षि के अर्थपूर्ण, निःस्वार्थ वचनों से द्रवित हुए। उनकी प्रार्थना की प्रशंसा करके, तथा पृथु द्वारा सम्मानित एवं पूजित, अच्युत भगवान् ने उन्हें आशीर्वाद दिया, और फिर प्रस्थान का मन बनाया।

मैत्रेय उवाच

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ।

पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥

maitreya uvāca iti vainyasya rājarṣeḥ pratinandyārthavad vacaḥ pūjito 'nugrḥītvainam gantum cakre 'cyuto matim

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: इस प्रकार राजर्षि पृथु के अर्थपूर्ण वचनों की प्रशंसा करके, अच्युत भगवान्, उनके द्वारा पूजित तथा उन्हें आशीर्वाद देकर, प्रस्थान का मन बनाया। (स्कन्ध 4, अध्याय 20, श्लोक 34)



पृथु की निःस्वार्थ प्रार्थना से द्रवित होकर, भगवान् राजा तथा सम्पूर्ण सभा को आशीर्वाद देते हैं, और पृथु, अब इन्द्र से पूर्णतः मेल किए, हाथ जोड़े उनकी ओर निहारते हैं जब वे प्रस्थान की तैयारी करते हैं (श्लोक 34-38)।

पृथु, उनका हृदय उमड़ता हुआ, प्रस्थान करते भगवान् को हाथ जोड़े तथा प्रेम से भरे नेत्रों से निहारते रहे, अब इन्द्र से तथा सबसे पूर्णतः मेल किए। इस प्रकार विंश अध्याय पृथु की भक्ति के शिखर पर समाप्त होता है — भगवान् साक्षात् देखे गए, उनका ज्ञान प्राप्त हुआ, और एक ऐसी प्रार्थना अर्पित हुई जो समस्त लोकों में उनके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहती थी।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. हमारी बाधाएँ भी एक दिव्य योजना के भीतर प्रकट होती हैं। भगवान् पृथु को दिखाते हैं कि इन्द्र की बाधा का भी एक बड़ी योजना में स्थान था। जो हमारा विरोध करता है वह भगवान् की व्यवस्था के बाहर नहीं; इसे देखना हमें शिकायत से मुक्त करता है (श्लोक 2-4)।
2. आत्मा शुद्ध तथा प्रकृति से अछूती है। भगवान् सिखाते हैं कि आत्मा एक, स्वयं-प्रकाशमान है और प्रकृति के त्रिगुणों का स्पर्श उसे बाँध नहीं पाता — भीतर की मूक साक्षी, न कि वह शरीर जिसमें वह निवास करती है (श्लोक 5-8)।
3. राजा का कर्तव्य रक्षा करना है, केवल शासन करना नहीं। भगवान् पृथु से स्पष्ट कहते हैं कि जो शासक अपनी प्रजा की रक्षा करता है वह उनके पुण्य में भागीदार होता है, जबकि जो रक्षा किए बिना कर लेता है वह उनका पाप अपने ऊपर लेता है। अधिकार सेवा के लिए है, केवल आज्ञा देने के लिए नहीं (श्लोक 13-15)।
4. भगवान् समता से जीते जाते हैं, केवल अनुष्ठान से नहीं। वे पृथु से स्पष्ट कहते हैं कि यज्ञ, तप, तथा योग, अपने आप, उन्हें प्राप्त नहीं करते — वे उस मन से जीते जाते हैं जो समस्त अवस्थाओं में सम रहता है। भक्ति एक आन्तरिक स्थिरता है, मात्र एक बाह्य प्रदर्शन नहीं (श्लोक 16)।
5. भगवान् को माँगो, भगवान् के उपहार नहीं। कोई भी वरदान अर्पित किए जाने पर, पृथु उन वस्तुओं को माँगते लज्जित होते हैं जो पतित भी रखते हैं। सर्वोच्च प्रार्थना संसार के खज़ानों को नहीं बल्कि उस खज़ाने को माँगती है जो उन्हें देता है (श्लोक 23)।
6. भगवान् की महिमा सुनना सबसे मधुर वरदान है। पृथु दस हज़ार कान माँगते हैं ताकि वे भक्तों के मुखों से भगवान् के चरणों का अमृत सुनते रहें। पवित्रजनों का संग तथा भगवान् की कथा का श्रवण स्वयं लक्ष्य है, किसी आगे के पुरस्कार का साधन नहीं (श्लोक 24-25)।
7. प्रेम-सम्बन्ध मुक्ति से भी बढ़कर है। पृथु उस विलय को भी अस्वीकार करते हैं जो जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त कर देता है, क्योंकि इससे उनका श्रवण तथा सेवा भी समाप्त हो जाएगी। एक भक्त के लिए, भगवान् की समीपता संसार से मुक्ति से भी अधिक मूल्यवान् है (श्लोक 23, 29, 31)।
8. निःस्वार्थ प्रेम भगवान् के अपने आनन्द को खींचता है। यह पृथु का कुछ न माँगना ही है जो भगवान् को सबसे अधिक प्रसन्न करता है। ऐसी कोई वस्तु उनका हृदय नहीं जीतती जैसी वह भक्ति जो केवल उन्हें ही चाहती है (श्लोक 34)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के केन्द्र में एक ऐसी शुद्ध प्रार्थना खड़ी है जो हमारी सम्पूर्ण इस समझ को पुनर्व्यवस्थित कर सकती है कि क्या चाहना चाहिए। समस्त के भगवान् पृथु को कुछ भी अर्पित करते हैं — और पृथु, वस्तुतः, *भगवान् का और* माँगते हैं: संसार से मुक्ति नहीं, स्वर्ग नहीं, बल्कि बस दस हज़ार कान, ताकि वे उन लोगों के मुखों से भगवान् की महिमा सुनना कभी बन्द न करें जो उनसे प्रेम करते हैं। यह विचार करने योग्य है कि यह कितना विचित्र तथा सुन्दर है। हममें से अधिकांश भगवान् के पास एक सूची लेकर आते हैं — पूरी की गई आवश्यकताओं की, हटाए गए

कष्टों की, यहाँ तक कि अर्जित आध्यात्मिक प्राप्तियों की भी। पृथु एक ऐसा प्रेम दिखाते हैं जो सूची से पूर्णतः आगे बढ़ चुका है, उस बिन्दु तक जहाँ चाहने को केवल एक ही वस्तु शेष है — स्वयं प्रियतम, और उनकी कथा का अनन्त आस्वादन। और ध्यान दें कि भगवान् को सबसे अधिक क्या प्रसन्न करता है: पृथु के सौ यज्ञ नहीं, उनकी विजयें या न्याय नहीं, बल्कि यह एक निःस्वार्थ प्रार्थना। भगवान् का हृदय, ऐसा प्रतीत होता है, इससे नहीं जीता जाता कि हम उनके लिए क्या सिद्ध करते हैं, बल्कि इससे कि हम उन्हें कितनी शुद्धता से चाहते हैं। अध्याय हमारी अपनी प्रार्थनाओं का परीक्षण करता है। जब हमें, अपने हृदय की शान्ति में, जो भी माँगें अर्पित किया जाए — क्या हम उपहारों की ओर बढ़ते हैं, या दाता की ओर? पृथु के दस हज़ार कान उस आत्मा का चित्र हैं जिसने पाया है कि स्वयं भगवान्, सुने, स्मरण किए तथा प्रेम किए गए, ही एकमात्र माँगने योग्य वरदान हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, पृथु की प्रार्थना अपने शब्दों में करें। शान्त बैठें, और कल्पना करें कि भगवान् आपको, सच्चाई से, जो भी आप माँगें अर्पित कर रहे हैं। ध्यान दें कि पहले क्या मन में आता है — और फिर, कोमलता से, उसे रख दें, और इसके बजाय वह माँगें जो पृथु ने माँगा: इस या उस उपहार के लिए नहीं, बल्कि एक ऐसे हृदय के लिए जो भगवान् को सुनने तथा स्मरण करने से कभी नहीं थकता। कुछ मिनट लेकर वास्तव में उनकी महिमा सुनें — उनकी कथा का कोई अंश पढ़ें या स्मरण करें, या कोमलता से “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का जप करें, उसे अपने लिए पृथु के दस हज़ार कानों में से एक बनने दें। और इन्द्र को क्षमा करने के भगवान् के परामर्श की भावना में, किसी भी शिकायत को छोड़ दें जिसे आप अब भी पकड़े हैं, यह विश्वास करते हुए कि जो आपका विरोध करता रहा है उसका भी एक ऐसी योजना में स्थान है जिसे आप देख नहीं सकते। उपहारों से अधिक दाता को चाहने में, आप वह प्रार्थना करते हैं जो भगवान् को सबसे अधिक आनन्दित करती है।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का यह विंश अध्याय राजा पृथु की भक्ति का मुकुट है। उनके सौ यज्ञों के प्रत्युत्तर में, वैकुण्ठ के भगवान् साक्षात् यज्ञ-मण्डप में प्रकट होते हैं, इन्द्र पश्चात्ताप करते हुए उनके साथ चलते हैं। क्षमा माँगे जाने से भी पहले, भगवान् राजा को सबसे गहन सत्य सिखाते हैं — कि आत्मा शुद्ध तथा प्रकृति से अछूती है, कि एक शासक का सम्पूर्ण उद्देश्य प्रजा की रक्षा करना है न कि केवल उन पर कर लगाना, और कि समचित्त भक्ति ही, न कि अनुष्ठान, उन्हें सचमुच जीतती है। फिर वे पृथु के समक्ष सृष्टि का हर वरदान रख देते हैं। शक्ति, स्वर्ग, या जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त करने वाली मुक्ति तक की ओर बढ़ने के बजाय, राजा दस हज़ार कानों के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगते, ताकि वे भक्तों के अधरों से भगवान् की स्वयं की महिमा सुनना कभी बन्द न करें। ऐसे प्रेम से द्रवित होकर जो अपने लिए कुछ नहीं चाहता, भगवान् अपना आशीर्वाद देते हैं और प्रस्थान की ओर मुड़ते हैं, जबकि पृथु, हर शिकायत अब विलीन हो चुकी, वाणी से परे भरे हृदय से उन्हें जाते हुए निहारते हैं। अध्याय का पाठ स्पष्ट खड़ा है: भगवान् के साथ सम्बन्ध इस लोक या परलोक के किसी भी पुरस्कार से बढ़कर है, और यही निःस्वार्थ लालसा है, किसी भी अनुष्ठान से अधिक, जो उनकी सबसे गहरी कृपा को खींचती है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, विंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-20-the-lord-appears-in-king-prithus-sacrificial-hall-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - कल्कि अवतार इंटरनेशनल - बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

